साहित्येतिहास की परंपरा में फ्रैंक.ई.के की अनुपस्थिति

Sheetanshu Kumar

Assam University, Silchar, Assam

Email Id: sheetanshukumar@gmail.com

जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के बाद हिन्दी साहित्य के विदेशी इतिहासकारों में फ्रैंक.ई.के का स्थान महत्वपूर्ण है। इतिहास की बुनियादी प्रवृत्तियों को पूरा करते हुए के ने अपने इतिहास-ग्रंथ में साहित्यिक प्रवृत्तियों के विवेचन की ओर ध्यान दिया है, काल-विभाजन और नामकरण का प्रयास किया है, और कोई कवि-वृत्त संग्रह तैयार करने से अलग उनका उद्देश्य एक विश्वसनीय इतिहास प्रस्तुत करने का रहा है। साहित्येतिहास लेखन की आवश्यकताओं को देखते हुए के के इतिहास को हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा में जितना महत्व मिलना चाहिए उतना नहीं मिलता। शायद इसका एक प्रमुख कारण इसका सीमित आकार है। के अपनी इस सीमा से परिचित भी थे। उन्होंने स्वीकार किया है कि महान साहित्यों में से किसी के विषय में विचार करना हो तो निर्धारित सीमा के भीतर पूरे के साथ न्याय करना असम्भव है। किन्तु इस पुस्तक के सीमित आकार की तरफ न जाकर उन स्थापनाओं की तरफ और उन प्रयासों की तरफ ध्यान देना ज्यादा उचित है जिसने हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा को प्रभावित किया हो, उसे और परिपक्वता प्रदान की हो।

मेरी दृष्टि में के के इतिहास-ग्रंथ 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर' की यह महत्वपूर्ण खूबी है कि इस पुस्तक में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती देशी-विदेशी इतिहासकारों की बहुत-सी कमियों से स्वयं को मुक्त रखने का प्रयास किया है। के के इस संक्षिप्त इतिहास की सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारों की तरह कवियों और उनकी रचनाओं का ब्यौरा प्रस्तुत करने के बजाय और गहरे जाकर

प्रवृत्तियों को समझने का प्रयास किया है और इसी कारण कई पूर्ववर्ती भ्रांत धारणाओं को उन्होंने अपने इतिहास में स्थान नहीं बनाने दिया। हाँलाकि उनके इस प्रयास की अपनी सीमाएँ रहीं। अपने पूर्ववर्ती प्राच्यविदों की तुलना में अंग्रेज जाति की श्रेष्ठता का भाव, ईसाई मत के प्रति अतिरिक्त आकर्षण, अंग्रेजी भाषा, शिक्षा और औपनिवेशिक साम्राज्य के प्रति निष्ठा का भाव उनके भीतर अवश्य कम रहा किन्तु फिर भी उसे स्पष्टतः चिह्नित किया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य की कई महत्वपूर्ण विशेषताओं की ओर के का ध्यान गया जिसे उन्होंने अपने इतिहास-ग्रंथ में रेखांकित भी किया है। एफ.ई.के ने 1920 में ही इस बात का रेखांकन अपने इतिहास में किया है कि हिन्दी में 'रिनेसांस' प्रगति पर है। उनका मानना है कि उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोप की संस्कृति के संपर्क के द्वारा हिन्दी साहित्य में एक नया प्रभाव आया।...इसी समय के आस-पास भारत में एक सशक्त साहित्यिक नवजागरण शुरू हुआ जो अब तक प्रगति पर है। के का ध्यान इस ओर भी गया है कि विचार और पद रचना की सुंदरता, गहन अनुभूति और उदात्त आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति इस साहित्य में व्यापक रूप में हुई है। देशभाषा को अर्थात लोगों की बोलचाल की भाषा के प्रयोग को भी के महत्व देते हैं। उनका कहना है कि लोगों की अपनी बोलचाल की भाषा में लिखी जाने के कारण ही यह साहित्य जनता के बीच लोकप्रिय है। हिन्दी के छन्द विधान की के ने बहुत प्रशंसा की है। के लिखते हैं कि "संभवतः ऐसी कोई भाषा न हो जिसका छन्द शास्त्र हिन्दी से ज्यादा सुसंपन्न और विकसित हो। ...विभिन्न छंदों के नियम अत्यंत जटिल हैं। यद्यपि वर्ण- विन्यास की शुद्धता और व्याकरणिक नियमों में यथेष्ट स्वतंत्रता की अनुमति दी जाती है। परिणामतः कुशल कवि के हाथों कविता में रूप और छन्द का अद्भुत आकर्षण उत्पन्न हो जाता है जिसकी अन्य किसी भाषा से तुलना नहीं की जा सकती।"[i] इसी तरह रामचरित मानस की प्रशंसा करते हुए के कहते हैं कि निस्संदेह यह एक महान काव्य है जिसकी गणना विश्व साहित्य की श्रेष्ठतम क्लासिकल कृतियों में की जानी चाहिए। इन सबके साथ ही कबीर, मीरा, सूरदास जैसे मध्ययुगीन कवियों और शिवप्रसाद सितारेहिन्द और बाबू हरिश्चन्द्र जैसे आधुनिक

लेखकों के विशेष योगदानों को भी इन्होंने चिह्नित किया है। के ने कबीर के बारे में यह कहा है कि "जिस अद्‌भुत साहस से उन्होंने समकालीन धार्मिक कर्मकाण्ड पर आक्रमण किया, हर प्रकार के पाखण्ड का निषेध करते हुए ईश्वर के अन्वेषकों से सत्य की माँग की और तीव्र नैतिकता के साथ ईश्वर के तत्व को सर्वोपरि रखने का आग्रह किया। यह उनके काव्य को असाधारण महत्ता प्रदान करता है। इसके अलावा उनके चुभते हुए व्यंग्य, आघात करने वाली सूक्तियाँ और छंदों की मोहक लय सब मिलकर उनके काव्य को आश्चर्यजनक रूप से शक्तिशाली बनाते हैं।"[ii] तुलसीदास के काव्य के महत्व को पहचानते हुए भी सूरदास के काव्य के महत्व को वे नहीं भूलते और रेखांकित करते हैं कि हो सकता है कि सूरदास जैसे अन्य कवियों ने पद-रचना और छंद-निर्वाह में तुलसी की अपेक्षा अधिक कुशलता का परिचय दिया है।[iii] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रशंसा करते हुए के ने लिखा है कि इन्होंने इतिहास, देशप्रेम, धार्मिक, भक्ति और प्रेम आदि विविध विषयों पर लिखा है और इनकी गणना हिन्दी साहित्य के महान लेखकों में होनी चाहिए। के के इन्हीं प्रयासों को देखते हुए इस ग्रंथ के अनुवादक सदानन्द शाही यह मान्यता रखते हैं कि हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की समूची परंपरा का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए शुक्लपूर्व इतिहासों का अध्ययन आवश्यक है और ख्यातिलब्ध आलोचक डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि "के ने हिन्दी साहित्य की जिन विशेषताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है उनमें से बहुत सारे आज भी विचारणीय हैं। इनमें से बहुतों ने आचार्य शुक्ल को अपने निष्कर्षों और निष्पत्तियों तक पहुँचने में प्रेरक का काम किया हो तो आश्चर्य नहीं। ऐसी स्थिति में जब हम स्वच्छ और स्पष्ट इतिहास के निर्माण के लिए पूरी परम्परा का मंथन कर रहे हैं, श्री फ्रैंक.ई.के द्वारा लिखित इस छोटे से इतिहास के ऐतिहासिक महत्व का आकलन आवश्यक हो जाता है।"[iv]

अपने पूर्ववर्ती इतिहास-लेखन की परम्परा की कुछ ऐसी भ्रांत धारणाएँ भी हैं जिनसे के स्वयं को सफलतापूर्वक मुक्त कर सके हैं। जैसे कि, भक्ति आंदोलन के उदय पर बात करते हुए के ने किसी प्रकार के विदेशी प्रभाव का ज़िक्र नहीं किया है, किसी बर्नार्ड ऑफ क्लेयरबक्स या सेंट टेरिसा के प्रभाव से इसे

उदित नहीं माना है। इस तरह ग्रियर्सन की कुछ मान्यताओं को इन्होंने शुक्लजी से पहले ही अस्वीकार करना शुरू कर दिया था। खड़ी बोली पद्य को ग्रियर्सन कमजोर और असमर्थ साबित करते रहे किन्तु के उनसे अलग जाकर फ्रेडरिक पिन्कॉट की तरह यह मान्यता रखते हैं कि गद्य और पद्य की भाषा एक होनी चाहिए। के ने लिखा है कि "हिन्दी गद्य आज एक आधुनिक बोली में लिखा जा रहा है, जो काव्य रचना के प्रयोजन से विशेष लोकप्रिय नहीं हुई है और यह भी देखा गया है कि न केवल कविता की भाषा गद्य की भाषा से भिन्न है बल्कि कविता के लिए अब भी कई बोलियाँ प्रयुक्त हो रही हैं। गद्य और पद्य की भाषा में नितान्त भिन्न प्रतिमानों की स्थिति कई अर्थों में दुर्भाग्यपूर्ण होगी और यह नहीं कहा जा सकता कि इस मामले में समाधान क्या होगा किन्तु कुछ आधुनिक कवियों में ऐसी भाषा प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति परिलक्षित हो रही है जो गद्य के अधिक निकट है।"[v]

इसी तरह उन्नीसवीं सदी में प्रवेश के दौर की रचनाओं सिंहासन बत्तीसी और बैताल पचीसी के बारे में के यह कहने का सामर्थ्य रखते हैं कि इन पुस्तकों की भाषा में उर्दू और हिन्दी मिली हुई है जबकि ग्रियर्सन को प्रेमसागर भी अरबी-फारसी रहित उर्दू ही लगती है। विदित है कि ये दोनों पुस्तकें सहज बोलचाल की भाषा में लिखी गई थीं और प्रेमसागर की तरह इनके निर्माण में शब्दों को छाँट कर अलग कर देने का कोई दिशानिर्देश नहीं दिया गया था। शिवप्रसाद सितारेहिन्द को याद करते हुए के ने लिखा है कि "लल्लूजीलाल द्वारा निर्मित नयी साहित्यिक भाषा के आलोचकों की कमी नहीं थी। चूँकि इसमें संस्कृत के अनेक शब्द थे। इसलिए पढ़े लिखे लोगों के अलावा औरों को इसे समझना आसान नहीं था। यह उर्दू की तरह की ही आत्यंतिक भाषा हो गई। राजा शिवप्रसाद इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं कि उन्होंने ऐसी साहित्यिक भाषा को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया जो फारसी मिश्रित उर्दू और संस्कृत प्रधान उत्कृष्ट हिन्दी के बीच की हो। उनका खयाल था कि ऐसी भाषा लोगों के बोलचाल के अधिक निकट होगी।"[vi] ऐसा नहीं है कि उर्दू के प्रति के की दृष्टि बहुत परिष्कृत थी, किन्तु इन बातों का रेखांकन वे कर सके यह अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है।

आधुनिक काल के नामकरण में भी के ने ग्रियर्सन का प्रभाव नहीं लिया है। ग्रियर्सन की तरह 'कंपनी के शासन में हिन्दुस्तान' और 'महारानी विक्टोरिया के शासन में हिन्दुस्तान' जैसे नामों के प्रयोग की जगह इन्होंने सहज ही आधुनिक काल नाम का प्रयोग किया है, जबकि के इस विचार से स्पष्टतः सहमत थे कि आधुनिकता के विकास में अंग्रेजों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। उनका अंग्रेजी शासन के बारे में यह मानना था कि एक विस्तृत साम्राज्य की स्वामिनी बनने के बाद उसने अपनी जिम्मेदारियों का अनुभव करना शुरू कर दिया था और अंग्रेजी शासन के साथ भारत में शांति और सुरक्षा आदि आने से हिन्दी साहित्य की मेधा को पुनर्स्थापित होने और अठारहवीं शताब्दी में आए ह्रास के बरक्स पुनरुत्थान का सुअवसर मिला।[vii]

अंग्रेजी भाषा और जाति के प्रति के के भीतर जो लगाव था यह उनकी अंग्रेजी के प्रति दृष्टि से भी प्रमाणित होता है। के का यह मानना था कि देशी भाषाओं के साहित्य की महत्वपूर्ण स्थिति तो बनी रहनी चाहिए किन्तु अंग्रेजी को कोई क्षति पहुँचाए बगैर। इसके लिए के का तर्क था कि "यह निश्चित सत्य है कि अधिकांश शिक्षित भारतीयों को इस बात से दुख होगा कि उनके लड़के अंग्रेजी के ज्ञान से प्राप्त सुअवसर को छोड़ दें, जो न केवल पाश्चात्य ज्ञान के उस विशाल भण्डार से परिचित कराता है, बल्कि भारत के अन्य भागों के उन शिक्षित लोगों से अन्तःसंपर्क का अवसर उपलब्ध कराता है, जिनकी बोली उससे भिन्न है। अस्तु यह लगभग अपरिहार्य है कि यह स्थिति हिन्दी के लिए कुछ असुविधापूर्ण होगी, क्योंकि यदि कोई लेखक दूर तक फैले शिक्षित पाठकों तक अपने विचार पहुँचाना चाहता है तो उसके लिए स्वाभाविक है कि देशी भाषा की अपेक्षा वह अपने विचार प्रकट करने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग करे। इस प्रकार कभी-कभी साहित्य के माध्यम के लिए देशी भाषा के प्रति अवज्ञा की प्रवृत्ति बनने लगती है और देशी भाषा की रचनाएँ शिक्षित जनों के बजाय अपढ़ लोगों के लिए हैं, ऐसा माना जाने लगता है। यह स्थिति हर दृष्टि से सोचनीय होगी और यह आशा की जानी चाहिए कि अंग्रेजी की जानकारी प्राप्त करने के अवसरों में कटौती किए बगैर भारतीय बोलियों को अधिकाधिक महत्वपूर्ण

स्थान दिया जाएगा।"[viii] कहना न होगा कि ऐसे तर्कों के कारण ही आजादी के साठ साल बाद भी हिन्दुस्तान अपनी मातृभाषाओं के महत्व को समझने में असमर्थ रहा है। औपनिवेशिक साम्राज्य द्वारा ऐसे तर्कों को इतना बढ़ावा दिया गया और ऐसी जरूरतें पैदा की गईं कि अंग्रेजी के प्रति आकर्षण और अधिक हुआ और देशी भाषाएँ ऐसे क्षतिग्रस्त हुईं कि उनका उबरना अब नामुमकिन-सा दिखता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि जिस समाज ने भी अतीत में अपनी मुक्ति के लिए लड़ाई लड़ी है अपनी मातृभाषाओं में लड़ी है और मातृभाषाओं की लड़ाई किसी भी मुक्ति-संग्राम का अनिवार्य हिस्सा है। हिन्दुस्तान की देशी भाषाओं में भी दुनिया के कई देशों की भाषाओं की तरह यह सामर्थ्य है कि वह अधुनातन ज्ञान की भाषा बन सके किन्तु अंग्रेजी के प्रति के के जैसी नीतियों ने इसे आज तक अपने उस सामर्थ्य का प्रदर्शन करने से दूर रखा। दुनिया के कई देश विकास के उच्चतम सोपानों तक बिना अंग्रेजी के सामने घुटने टेके पहुँचने में समर्थ रहे हैं। स्वाधीनता आंदोलन के नेता इस बात के महत्व को बहुत पहले ही समझते थे। गाँधी ने अपने हिन्द स्वराज में इस बात को प्रतिपादित करने का काफी प्रयास किया है। आज भी भारत में एकता की भावना का अगर क्षय हो रहा है तो इसका कारण यह है कि अपनी एकता के तत्वों को अपनी संस्कृति और सभ्यता के मध्य पहचानने की बजाय हम उसे बाह्य माध्यमों में तलाश रहे हैं।

इसी तरह ईसाई मत के प्रति अतिरिक्त झुकाव ने भी के की दृष्टि को प्रभावित किया है हाँलाकि यह प्रभाव पूर्ववर्ती प्राच्यविदों की तुलना में कम दिखाई देता है। के के इतिहास में यह प्रयास दिखाई देता है कि कवियों के विश्लेषण में क्रिस्टोमैथी हावी न हो। उन्हें बार बार ईसाई मूल्यों का ध्यान नहीं आता है, किन्तु पुस्तक की आखिरी पंक्तियों में भारतीय संदर्भों में ईसाई मत के महत्व को प्रतिपादित करने से के स्वयं को रोक नहीं पाए। के ने लिखा है कि "भारतीय लोग इस बात से काफी अनभिज्ञ हैं कि राजनीतिक स्वतंत्रता, सामाजिक उत्थान और धार्मिक सुधार के कितने नए आंदोलनों को वस्तुतः ईसाई आदर्श से प्रेरणा मिली है। भारत ने अपने और अपने बच्चों के लिए महान गौरवशाली भविष्य का सपना

देखा है जो उसके अतीत की उपलब्धियों से भी महानतर है हाँलाकि वे उपलब्धियाँ अप्रतिम थीं। न्याय निष्ठा और कर्तव्य तथा मातृभाव और सेवा के नए आदर्श उसके सामने प्रस्तुत हुए हैं। बहुत सीमा तक इनके लिए क्राइस्ट के जीवन और उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा मिली है। भारतीय जीवन में जो कुछ उदात्त और उत्कृष्ट है अनेक दृष्टियों से क्राइस्ट में उन सबकी परिपूर्णता है।"[ix] उपर्युक्त पंक्तियों में के ने यह माना है कि भारतीय जीवन में बहुत कुछ उदात्त और उत्कृष्ट है। इस उदात्तता और उत्कृष्टता में के ईसा मसीह के जीवन और शिक्षा का प्रभाव देखते हैं। इसके पहले ग्रियर्सन ने भी भारतीय जीवन में उदात्तता और उत्कृष्टता देखी थी। ग्रियर्सन भक्ति आंदोलन में यह चेतना बहुत बड़े पैमाने पर देखते हैं। ग्रियर्सन पर ईसाई मत इतना हावी था कि वह सोचने लगे कि भक्ति आंदोलन में अगर उदात्तता और उत्कृष्टता आई है तो वह ईसाई मत का प्रभाव ही होना चाहिए। के ऐसा कुछ तो नहीं लिखते किन्तु फिर भी उन्हें समकालीन समय में यह प्रभाव बहुत ज्यादा दिखाई देता है। आज ग्रियर्सन की मान्यता खंडित हो चुकी है क्योंकि वह शुद्ध अटकलबाजी थी। किन्तु यह मान्यता परवर्ती इतिहासकारों को समझनी चाहिए थी कि अंग्रजों के आने से पहले ही हिन्दुस्तान में उदात्तता और उत्कृष्टता सूर, मीरा, कबीर, जायसी, तुलसी जैसे कवियों ने जिस बृहद स्तर पर प्रस्तुत किया था वैसा विश्व साहित्य में दुर्लभ है। यानी यह की भारतीय जीवन के लिए पर्याप्त प्रेरणा उसके अतीत में उपलब्ध थी और निश्चय ही यह उपलब्धियाँ के की दृष्टि से अलग अंग्रेजों के द्वारा दी गई औपनिवेशिक प्रेरणा से ज्यादा प्रभावशाली थीं और इसीलिए आज जब हम हिन्दी साहित्य का कोई इतिहास तैयार करते हैं तो अंग्रेजों के द्वारा दी गई प्रभावशाली प्रेरणाएँ दूर-दूर तक दिखाई नहीं देतीं किन्तु अपने भक्ति युगीन कवियों में वह प्रेरणा हमें सहज ही दिखाई देती है।

विरासत से ग्रियर्सन से के को एक और विकृति उपलब्ध हुई थी। उर्दू और हिन्दी के बारे में जिस तरह तार्किकता से इतर अस्मिताई सीमाओं से ग्रस्त होकर अंग्रेज विद्वानों ने विवेचन किया था उससे के भी मुक्त नहीं हो पाए। हिन्दी-उर्दू के बारे में के के कुछ सार्थक विचारों का उल्लेख ऊपर किया गया है किन्तु

ऐसे विचार उनमें परिपक्वता तक नहीं पहुँच सके तो इसमें परम्परा का (जिसकी श्रेष्ठता पर इन्हें संदेह नहीं था) पूरा हाथ था। अंग्रेज जिस तरह शुरू से यह समझ नहीं पा रहे थे या अपनी औपनिवेशिक सीमाओं के चलते समझने में असमर्थ थे कि हिन्दी-उर्दू का यह लचीलापन अगर कम नहीं हो पा रहा है तो इसका एक प्रमुख कारण उनके द्वारा भारतीय उद्योग धंधों को नष्ट करना और शहरीकरण की प्रक्रिया को खत्म करना है, उसी तरह बीसवीं सदी में आकर के भी यह समझने में असमर्थ ही रहे। इस सामर्थ्य के लिए अपनी जातीय श्रेष्ठता की भावना से मुक्त होना आवश्यक था किन्तु यह आवश्यकता उन्नीसवीं सदी में केन्द्रीय तत्व बन सके ऐसा असंभव था। उन्नीसवीं सदी के ये बीज के में भी मौजूद रह गए। इसीलिए के ग्रियर्सन की इस मान्यता से सहमत दिखाई देते हैं कि बिहारी वास्तव में उस भाषा समूह से संबद्ध है जिसकी एक सदस्य बंगला है। हिन्दी-उर्दू के संबंध में के यह तो कहते हैं कि उर्दू और हिन्दी का विकास पश्चिमी हिन्दी की एक बोली से हुआ है किन्तु ग्रियर्सन की तरह के अपने साहित्येतिहास में उर्दू को स्थान नहीं देते। के एक ऐसी भाषा के साहित्य को अपने इतिहास में स्थान देते हैं जिसे कि वे हिन्दी क्षेत्र से भिन्न क्षेत्र की भाषा मानते हैं (हाँलाकि उनकी यह सोच गलत थी) किन्तु उर्दू के साहित्य का इतिहास नहीं रखते जबकि वह यह मानते हैं कि उर्दू उसी क्षेत्र से उत्पन्न हुई भाषा है जिसका कि वह इतिहास प्रस्तुत कर रहे हैं। के ने लिखा भी है कि "जो भाषाएँ भिन्न- भिन्न स्रोतों से विकसित मानी जाती हैं, उनके साहित्य को एक समूह में रखना प्रथम द्रष्टया मनमाना-सा लग सकता है। जैसे उदाहरण के लिए यहाँ एक साथ रखी गई अन्य भाषाओं की अपेक्षा पश्चिमी हिन्दी की उत्पत्ति पंजाबी के साथ तथा बिहारी की बंगला के साथ अधिक घनिष्ठता से जुड़ी है।" निश्चय ही उनकी यह पद्धति आश्चर्यजनक लगने लगती है जब उर्दू के साथ उनका व्यवहार सामने आता है। उर्दू को अलगाने के पीछे के का तर्क है कि इस पुस्तक में जिन भाषाओं के साहित्य को एक साथ शामिल किया गया है उनका साहित्य आपस में बहुत घनिष्ठता से जुड़ा रहा है। हिन्दी-उर्दू के अलगाव के बारे में के का तर्क है कि साहित्यिक भाषा के रूप में उर्दू को हिन्दी से अलग करने वाला महत्वपूर्ण तथ्य है उसमें

प्रयुक्त छंद। उर्दू ने फारसी पद्धति का अनुसरण किया है और उर्दू कविता का कथ्य भी बहुत कुछ फारसी कथ्य से प्रभावित है। साहित्यिक विकास का यह तर्क देकर हिन्दी-उर्दू को अलग कर देना आश्चर्यजनक लगता है वह भी तब जब ऐसी भाषाओं को वे अपने इतिहास में शामिल करते हैं जो उनकी नजर में हिन्दी से अलग उद्गम स्रोतों से आती हैं। किसी भाषा में अगर बहुरूपी साहित्यिक विकास हो रहा है तो यह उस भाषा की क्षमता और विशेषता है जिस पर गर्व किया जाना चाहिए किन्तु के उसे ही इनकी संपदा को अलगाने के तर्क के रूप में गढ़ते हैं। अंग्रेजी साहित्य को इस तर्क के आधार पर विभाजित किया जाने लगा तो अफ्रीका में अंग्रेजी के नाम पर लिखे गए एक बड़े साहित्य का क्या होगा। ग्रियर्सन प्रेमसागर की खड़ी बोली तक को अरबी-फारसी रहित उर्दू कहकर सिर्फ देशभाषाओं का साहित्यिक इतिहास लिख रहे थे और इस दृष्टि ने परवर्ती इतिहास लेखन को अत्यधिक प्रभावित किया। ग्रियर्सन ने अपने इतिहास को देशभाषाओं का इतिहास ही कहा है। के सहमत दिखाई देते हैं ग्रियर्सन के इस नामकरण से, बस सुविधा के लिए और विस्तार से बचने के लिए ही वे 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नाम प्रयोग में लाते हैं।

हिन्दी साहित्य की सामान्य विशेषताओं का जिक्र करते हुए के यह लिखते हैं कि हिन्दी कविता में जो दूसरा तथ्य ध्यान आकृष्ट करता है वह है उसके अधीन विषय वस्तु का सीमित क्षेत्र। के को हिन्दी साहित्य का विषय वस्तु सीमित न दिखाई देता और सिर्फ धार्मिक रुचि की प्रधानता न दिखाई देती, अगर वे यह समझ पाते कि देशभाषा खड़ी बोली की उर्दू शैली में जो साहित्य रचा जा रहा है वह भी इसी विशाल प्रदेश का साहित्य है। उन्हें हिन्दी साहित्य में विशुद्ध मानवीय प्रेम की कविता का अभाव खटकता है। वे तर्क गढ़ते हैं कि बाल विवाह के सामान्य प्रचलन तथा स्त्रियों की अलगाव की स्थिति के कारण यौवन का रोमांटिक समय, जो प्रेमचर्या का काल कहा जाता है, वह भारतीय युवा पुरुषों और स्त्रियों के जीवन में आता ही नहीं।[x] के को अपनी इस मान्यता की कमी पता चलती अगर वे उर्दू के साहित्य के प्रति आत्मीयता दिखाते जिसका मूल विषय वस्तु ही हुस्न और इश्क था। इस धारा के पहले

घनानंद जैसे कवि ने भी विशुद्ध मानवीय प्रेम की कविता लिखी है, किन्तु आश्चर्य है कि के को लगता है कि यहाँ मानवीय प्रेम की कविता का अभाव है। अंग्रेज जाति से अनावश्यक तुलना करने के कारण ही भारतीयों के संदर्भ में के ने यह गलती कर दी है। हिन्दी-उर्दू को अलग करने का काम अंग्रेजों ने किस तरह और किन कारणों से किया था, इसके पर्याप्त तर्क दिए जा चुके हैं किन्तु अपनी इसी सीमित दृष्टि के कारण के यह तर्क गढ़ते हैं कि हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए एक ऐसी साहित्यिक भाषा की बहुत जरूरत थी जो हिन्दुओं को प्रशंसनीय लग सके और ऐसी भाषा का निर्माण उस उर्दू को लेकर हुआ जिसमें से फारसी और अरबी मूल के शब्द निकाल दिए गए हों तथा उनकी जगह संस्कृत और हिन्दी मूल के शब्दों का समावेश कर लिया गया हो।[xi] के यह समझ नहीं सके कि भाषा अपना साहित्य और साहित्य अपनी भाषा खुद गढ़ते हैं। प्रेमसागर को गढ़कर अंग्रेजों ने साहित्येतिहास की परम्परा को कितना नुकसान पहुँचाया इसे बयान नहीं किया जा सकता।

साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में तासी और ग्रियर्सन के इतिहास-ग्रंथों का ध्यान रखें और आगे चलकर फ्रैंक ई. के की भूमिका को देखें तो यह स्पष्ट चिह्नित किया जा सकता है कि जैसे-जैसे औपनिवेशिक शासन आगे बढ़ता रहा प्राच्यविदों के इतिहास-ग्रंथों में अंग्रेज जाति के प्रति आत्मीयता, ईसाईयत के प्रति लगाव, औपनिवेशिक शासन के प्रति समर्पण और बुर्जुआ मानसिकता जैसे मनोभाव जो साम्राज्य स्थापना के साथ बहुत प्रभावी हो गए थे क्रमशः कम होते गए। के में उक्त प्रभाव निश्चय ही दिखाई देते हैं किन्तु उनमें यह भी प्रयास दिखाई देता है कि अपने इतिहास-लेखन को और भी विश्वसनीय कैसे बनाया जाए। प्राच्य को संरचित करने, उसे व्याख्यायित करने और अधिकार जमाने की प्रवृत्ति कम होती दिखाई देती है। उन्नीसवीं सदी में प्रवेश करने के बाद और विशेष रूप से उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में संस्कृत और फारसी साहित्य की श्रेष्ठ परंपरा को स्वीकार करने के बाद धीरे-धीरे हिन्दी साहित्य की श्रेष्ठ परंपरा को भी खंडित रूप में ही सही महत्व दिया जाने लगा। विदेशी साहित्येतिहासकारों में ग्रियर्सन के बाद निश्चय ही इस दृष्टि से फ्रैंक ई. के का योगदान महत्वपूर्ण है।

हिन्दी साहित्य की जिन प्रवृत्तियों की ओर उन्होंने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है, उसके पश्चात साहित्येतिहास लेखन की परंपरा में उनकी अनुपस्थिति थोड़ी खटकती है।

---

[i] फ्रैंक.ई.के, ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर, 1920 (अनुवाद- सदानन्द शाही, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकायत प्रकाशन, गोरखपुर, अनूदित संस्करण- 1998), पृ.19

[ii] वही, पृ.36

[iii] वही, पृ.65

[iv] वही, फ्लैप से

[v] वही, पृ.108

[vi] वही, पृ.95

[vii] वही, पृ.93

[viii] वही, पृ.107

[ix] वही, पृ.109

[x] वही, पृ.105

[xi] वही, पृ.95